THE ECONOMIC TIMES

Date: 06-02-25

Trump's Riviera Lebensraum Balloon

ET Editorial

Fans of audacious plans will be suitably impressed by Donald Trump's latest proposal: that the US take over the Gaza Strip, remove its Palestinian population — all 2 million of them — and turn it into the 'Riviera of the Middle East'. For a powerful client state like Israel, such a 'formulation', regardless of whether the last bit is followed up or not, seems like an MoU to do away with any 'two-state solution'. When you get rid of people, you get rid of having to share or divide space.

Trump is a born-again believer in universal wide-eyed admiration for American dominionship/guardianship. Or so he wants us to believe. If so many non-Americans — Palestinians and Canadians, if not that many Greenlanders — want to make the US their home, making the American mountain come to Mohammads seems reasonable. But Trump first came to office in 2016 promising to get America out of nettlesome West Asia, and relieve Uncle Sam's burden of 'nation-building' duties. Yes, he's perfectly comfortable with saying one thing and later doing the opposite (or nothing). But getting more entrenched in quagmire would make little sense even by Trump's 'sense is overrated' standards. POTUS is right about one thing: Gaza isa 'big pile of rubble right now'. But his proposal of shunting Gazans into Egypt and Jordan (they've said no), and not to non-rubbly parts of Israel, has his slip showing.

The Sykes-Picot Agreement between Britain and France in 1916 divvied up post-Ottoman Arab territories. Its result is at play to this day. Floating a displacement plan in the form of 'project development' — recognisable in the region as both Lebensraum-and Nakba-style ethnic cleansing — can only add more destructive disruption beyond Gaza, Israel or even West Asia.

THE HINDU

Date: 06-02-25

A tough call

The rupee's slide confounds monetary policymakers' task

Editorial

The Reserve Bank of India's Monetary Policy Committee (MPC) will conclude its first policy review of 2025 on Friday (February 7, 2025), in significantly different circumstances from its December 2024 meet. For one, the key personnel have changed. The RBI has a new Governor, with former Revenue Secretary Sanjay Malhotra replacing Shaktikanta Das soon after the last review. Deputy Governor Michael Patra, an MPC member who was in charge of monetary policy, also retired last month. With the Centre yet to name his successor, navigating this review is going to be a tad tricky for the new central bank boss, with another deputy holding additional charge of monetary policy. Second, the rupee is in a free fall of sorts. After hitting 85 to the U.S. dollar on December 19, 2024, it slipped to 86 on January 13, 2025 and crossed 87 on February 3, partly due to the third factor at work. The strengthening dollar is driven by U.S. President Donald Trump's overdrive to 'Make America Great Again' with higher tariffs on major trade partners, and other disruptive economic plans such as exiting global tax accords, shutting aid flows, et al.

One thing has not changed — the clamour for an interest rate cut from industry and government honchos. In December, this noise was heightened after a sharp growth blip in the July-September quarter when GDP grew just 5.4%. Now, with 2024-25 GDP growth downgraded to just 6.4%, and the no marked uptick in economic metrics in the December-ending quarter, growth worries remain entrenched. In the interim, there has been some back and forth between North Block and Mint Street on the factors responsible for stumbling economic activity. The Finance Ministry sought to lay some of the blame for an urban demand slump on tight monetary policy. RBI officials, in the central bank's January bulletin, said the "one way" to spark a growth rebound and a virtuous cycle of fresh private investments, is to boost consumption through higher disposable incomes, especially for the urban middle class that has been pining for relief from food inflation. With the Budget delivering on this front with income tax cuts, the ball is back in the RBI's court. Inflation has been over 5% in the last five months, but may have eased closer to the RBI's 4% target in January. But a rate cut could also hurt the rupee further, and spur higher imported inflation. It is an unenviable situation for the new RBI chief to be in; he might be tempted to take a cue from Mr. Das who had surprised markets with a rate cut in the first review under his watch in 2019, reversing his predecessor's stance.

दैनिक भास्कर

Date: 06-02-25

हमें अपनी बुनियाद को और मजबूत बनाना होगा

संपादकीय

चिकित्सा विज्ञान के अनुसार व्यक्ति का 90% दिमाग पांच साल तक की अवस्था में विकसित हो जाता है और नहीं उसके पानी जीवन का शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक आधार तैयार करता है। तथाकथित सांखिको लाभ की स्थिति यह है कि सरकार के ही एनएचएस-5 के अनुसार 15 से 49 आयु वर्ग के केवल 50.2% पुरुष और 41% महिलाएं ही दस वर्ष या उससे क्या की स्कूली शिक्षा पा सके हैं। 15 से 19 साल की तरण- आबादी में जो अगले तीन दशकों तक देश का रोगी- केवल 35.9% लड़के और 34% लड़कियां तक शिक्षा पा सके है। हमारे शिशुओं (दो साल तक के) में जो अगले एक या दो दशकों में कार्यका हिस्सा बनने यानी तथाकथित मासिक डिविडेंड देने जा रहे हैं- 88.9% को न्यूनतम और समुचित पोषक असर नहीं मिल पाया है। समझा जा सकता है कि क्यों 17-18 अनु-वर्ग के चों में 77% ही कक्षा दो की पुस्तक पड़ फते हैं और 35% ही गणित के सामान्य हल कर पाते हैं। ये ही पुत्र अगले कई दशकों तक भारत का भविष्य तय करेंगे। यह भी ध्यान रहे कि 2030 के बाद हर साल वृद्धों की आबादी बढ़ती जाएगी और युवाओं की कम होती जाएगी। एआई और क्वांटम कम्प्यूटिंग चिप के गुड़ और जटिल ज्ञान के दौर में क्या हम चीन और अमेरिका के मुकाबले खड़े हो पाएंगे?

दैनिक जागरण

Date: 06-02-25

जाति गिनने पर जोर

संपादकीय

पटना पहुंचे राहुल गांधी ने जातिगत गणना पर जोर देते हुए जिस तरह यह कहा कि बिना इसके दलितों, आदिवासियों और पिछड़ों का विकास नहीं होगा, वह इसलिए परेशान करने वाला है, क्योंकि यदि ऐसा है तो फिर जवाहरलाल नेहरू से लेकर इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री रहते जातिवार गणना क्यों नहीं हुई? क्या राहुल गांधी यह कहना चाहते हैं कि कांग्रेस के शासनकाल में जातिगत गणना न कराकर दलितों, आदिवासियों और पिछड़ों को विकास से जानबूझकर वंचित किया गया ? क्या इस तथ्य से मुंह मोड़ना सही होगा कि स्वतंत्रता के बाद जातिगत गणना न होने के बाद भी इन वर्गों का न केवल उल्लेखनीय विकास हुआ है, बल्कि जातीय विभाजन भी कम हुआ है। राहुल गांधी जातिगत गणना की जिद पकड़ने के साथ जिसकी जितनी भागीदारी उसकी उतनी हिस्सेदारी पर भी जोर दे रहे हैं। आखिर वंचितों, पिछड़ों के उत्थान और कल्याण के कार्यक्रम उनकी सामाजिक-आर्थिक हैसियत देखकर चलाए जाने चाहिए या फिर उनकी संख्या के हिसाब से ? यह ठीक नहीं कि राहुल गांधी जातिगत गणना की मांग करते हुए जातीय वैमनस्य पैदा करने की भी कोशिश कर रहे हैं। उनकी यह कोशिश उसी खतरे को रेखांकित करती है, जिसके उभरने की आशंका है। खतरा केवल इसका नहीं है कि जातिगत गणना के आंकड़ों के सहारे जातियों को एक-दूसरे के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश हो सकती है। खतरा इसका भी है कि जातिवादी राजनीति को नए सिरे से बल मिल सकता है।

इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि अतीत में किस तरह कुछ राजनीतिक दल अपने-अपने हिसाब से चुनिंदा जातियों को गोलबंद करके राजनीति करते रहे हैं, भले ही इसके नतीजे में समाज में जातीय वैमनस्य बढ़ा हो। देश में कई

राजनीतिक दल तो ऐसे हैं, जो जाति विशेष की राजनीति करते हैं। इससे इन्कार नहीं कि जातिगत गणना से यह पता चलेगा कि विभिन्न जाति समूहों की कितनी संख्या है, लेकिन यह माहौल बनाना ठीक नहीं कि देश की समस्त समस्याओं के समाधान की कुंजी जाति गिनने में ही है। यह माहौल तो भारतीय समाज में उस विभेदकारी जाति व्यवस्था को और मजबूत बनाएगा, जिसे टूटना चाहिए और जो हाल के दशकों में एक बड़ी हद तक टूटी भी है। अच्छा होता कि बिहार यात्रा पर गए राहुल गांधी इससे अवगत होते कि एक समय इस राज्य में जातीय हिंसा किस तरह चरम पर थी। राहुल गांधी की मानें तो शासन तंत्र के साथ निजी क्षेत्र में सभी जातियों के समुचित प्रतिनिधित्व के अभाव- असंतुलन का कारण जातिगत जनगणना न होना है। अच्छा होता कि वह यह बताते कि यह अभाव अथवा असंतुलन जाति गिनने से कैसे दूर हो जाएगा? राहुल गांधी यह कहते हैं कि अमुक- अमुक क्षेत्रों में दलितों, आदिवासियों, पिछड़ों की हिस्सेदारी कम है, लेकिन क्या कांग्रेस के प्रकोष्ठों में उनकी समुचित भागीदारी है?

जनसत्ता

Date: 06-02-25

मनरेगा पर मार

संपादकीय

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना यानी मनरेगा से जुड़े श्रमिक लगातार बेरोजगार हो रहे हैं। यह सिलसिला चार वर्षों से जारी है। इस दौरान कई आरोप लगे और सरकार ने सफाई भी दी। मगर अब केंद्र ने अंततः स्वीकार कर लिया है कि वर्ष 2022 से 2024 के मध्य एक करोड़ पचपन लाख से अधिक मजदूरों के नाम हटा दिए गए हैं। आश्चर्य है कि करोड़ों नागरिकों को हर महीने प्रति व्यक्ति पांच किलो अनाज तो दिया जा रहा है, लेकिन काम नहीं। यह निराशाजनक है कि जो लाखों श्रमिक काम कर रहे थे, अब वे खाली बैठ गए हैं। मनरेगा के माध्यम से प्रतिवर्ष ग्रामीण इलाकों में रोजगार का सृजन किया जाता है। इस योजना में सरकार हर वर्ष बड़ा निवेश करती है। वित्तवर्ष 2024-25 में ही छियासी हजार करोड़ रुपए की राशि आबंटित की गई। यह समझ से परे है कि इतना बड़ा बजट रखने के बावजूद इस योजना से जुड़े श्रमिक क्यों हटाए जा रहे हैं। जबकि संवैधानिक प्रतिबद्धता जताई गई है कि मनरेगा के जरिए ग्रामीण भारत के नागरिकों को देश के विकास से जोड़ा जाएगा। शहरों की तरह गांवों में भी रोजगार के अवसर बढ़ेंगे।

मनरेगा का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण परिवारों के वयस्क सदस्यों को साल में सौ दिन रोजगार देना था। मगर केंद्र की यह महत्त्वाकांक्षी योजना धीरे-धीरे भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ती गई। धांधली होने लगी, फर्जी कार्ड बनने लगे। यह दुखद ही है कि ग्रामीण बेरोजगारों के लिए धरातल पर उतारी गई योजना पंचायतों, ग्राम प्रधानों और रोजगार सेवकों की मिलीभगत के कारण बर्बाद हो गई। 'जाब कार्ड' बनने पर भी श्रमिकों को पता नहीं होता कि उनके खाते में पैसा आया भी कि नहीं। योजना का संचालन कर रहे लोगों के फर्जीवाड़े का ही नतीजा है कि वित्तवर्ष 2023-24 में 85 लाख कार्ड हटा दिए गए थे। यह कोई नई बात नहीं, इससे पहले भी कई राज्यों से मनरेगा सूची से नाम हटाए जाते रहे हैं। बजट राशि भी घटाई

जाती रही है। मगर यह कोई उचित रास्ता नहीं कहा जा सकता। सरकार को इसे दुरुस्त करने का तरीका सोचना चाहिए, न कि इसमें कटौती का । अगर यही क्रम रहा तो इस योजना का औचित्य ही क्या रहेगा ?

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 06-02-25

कितने घंटे काम और कितना आराम

संघमित्रा शील आचार्य, (प्रोफेसर, जेएनयू)

इंफोसिस के सह-संस्थापक एन नारायणमूर्ति का 70 घंटे प्रति सप्ताह काम करने और एलऐंडटी चेयरमैन एसएन सुब्रह्मण्यन द्वारा हर हफ्ते 90 घंटे काम करने संबंधी बयान के बाद टेस्ला और स्पेसएक्स जैसी नामचीन कंपनियों के सीईओ एलन मस्क ने कर्मचारियों को सप्ताह में 120 घंटे काम करने का सुझाव दिया है। स्वाभाविक ही दुनिया भर में इसका विरोध हो रहा है। वास्तव में, आदर्श मानक से अधिक काम करने की जो सलाह दी जा रही है, वह नौजवानों के उत्साह का अपने हित में इस्तेमाल करने की एक रणनीति है। मगर इसका नुकसान न सिर्फ कर्मचारियों के तन पर, बल्कि मन पर भी खूब होगा।

इसे यूं समझिए। हर व्यक्ति के लिए दिन 24 घंटे का ही होता है, यानी सप्ताह में कुल 168 घंटे। अगर उससे सप्ताह में छह दिन (कार्य सप्ताह पांच दिनों का ही होता है) भी काम लिया जाए, तो 120 घंटा काम करने के लिए उसे रोजाना 20 घंटे काम करने पड़ेंगे। शेष चार घंटे में उसे अपने शरीर को फिर से तैयार करना होगा। यानी इन चार घंटों में उसे जरूरी नींद लेनी होगी, जो कम से कम छह-सात घंटे की होनी चाहिए, क्योंकि इससे कम सोने से व्यक्ति में तनाव बढ़ता है और उसकी एकाग्रता प्रभावित होती है उसे दिल के रोग भी हो सकते हैं। इन्हीं चार घंटों में उसे शरीर को भोजन के रूप में जरूरी खुराक देनी होगी। तो, इसके लिए या तो वह कम खाना खाएगा या फिर 'वर्किंग लंच' (खाना खाते- खाते काम करना) करेगा। जबकि, चिकित्सा विज्ञान कहता है, भोजन करते समय हमें अपना पूरा ध्यान खाने पर लगाना चाहिए। इससे शरीर आसानी से जरूरी पोषक तत्व अवशोषित कर पाता है। ढंग से भोजन न करने पर शरीर में शूगर की मात्रा बढ़ सकती है। यह समस्या भोजन न करने से और अधिक पैदा होती है। फिर, सेहतमंद बने रहने के लिए उसे वर्जिश आदि भी इन्हीं चार घंटों में करने होंगे। जबकि, डॉक्टर रोजाना कम से कम आधा घंटा पैदल चलने वा व्यायाम करने की सलाह देते हैं। साफ है, चार घंटे में से सारे काम मुमकिन नहीं हैं। वही समस्या हफ्ते में 70 (रोजाना 11 घंटे) या 90 घंटे (प्रतिदिन 15 घंटे) काम करने पर भी आएगी।

अधिक घंटे तक काम करने से हमारा निजी रिश्ता भी प्रभावित होता है, फिर चाहे वह घर के भीतर हो या बाहर या फिर कार्यस्थल पर अब तो कई परिवार खाने के टेबल पर फोन से दूरी बरतने लगे हैं, ताकि वह वक्त तो वे परिजनों के साथ बिता सकें। महिलाओं के लिए स्थिति और विकट हो सकती है। उन्हें दफ्तर का काम तो करना ही पड़ेगा, घर की दूसरी जिम्मेदारियां भी निभानी पड़ेंगी। ऐसे में तो उनके लिए स्थिति जीवन- मरण जैसी बन जाएगी।

सितंबर 2021 में एनवायर्नमेंट इंटरनेशनल नामक जर्नल में एक शोध पत्र छपा था, जिसमें विश्व स्वास्थ्य संगठन और अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के एक साझा अध्ययन का जिक्र किया गया था उस अध्ययन में साल 2016 से 2018 तक दुनिया भर के 50 करोड़ लोगों पर शोध करके बताया गया था कि जो लोग सप्ताह में 50 घंटे से अधिक, यानी रोजाना आठ-नौ घंटे से ज्यादा काम करते हैं, उनमें दिल की बीमारी होने की आशंका कहीं अधिक होती है। इन दो वर्षों में पांच प्रतिशत मौत की वजह काम के अतिरिक्त घंटे को माना गया था।

फिर ऐसा भी नहीं है कि अतिरिक्त काम करने से हमारी उत्पादकता बढ़ जाती है। अर्थशास्त्र के छात्रों को शुरुआती दिनों में "डिमिनिशिंग रिटर्न' पढ़ाया जाता है, जिसका मतलब है कि भले ही मूल्य और ऊर्जा अधिक लगाई जाए, लेकिन उससे मिलने वाला लाभ तुलनात्मक रूप से कम ही होता है। इसका सरलीकरण हम अपने खान-पान में भी देखते हैं, शुरुआती निवाला शरीर के लिए बहुत काम का होता है, लेकिन आखिर निवाला जाते-जाते उसका औचित्य घट जाता है। यह सिद्धांत काम के घंटों पर भी लागू होता है। शुरुआती घंटों में तो हमारी उत्पादकता बहुत अधिक होती है और हम तेजी से काम करते हैं, लेकिन जैसे-जैसे दिन ढलने लगता है, हमारा शरीर शिथिल पड़ने लगता है, जिसका असर हमारी उत्पादकता पर पड़ता है।

भारत जैसे देश की भौगोलिक दशाएं भी काम के अत्यधिक घंटे के खिलाफ हैं। हम ऐसे वातावरण में रहते हैं, जहां दिन के समय तापमान का चरम पर होना हममें आलसपन को बढ़ा देता है। यही कारण है कि पुरानी पीढ़ी के लोग दोपहर में सोना पसंद करते थे। इससे हमारा शरीर फिर से तरोताजा हो उठता था। आज की तेज भागती जिंदगी में यह दिनचर्या तो संभव नहीं, इसलिए रात में पर्याप्त नींद लेने की सलाह डॉक्टर देते हैं मगर 15-20 घंटे रोजाना काम करने से यह भला कैसे संभव होगा ? बेशक, गरीबी या तंगहाली की वजह से कुछ समय के लिए अतिरिक्त काम करना मजबूरी हो, लेकिन लंबे समय तक ऐसा करने की आदत सेहत के लिए खतरनाक हो सकती है।

हां, यह स्थिति नौकरी देने वाली कंपनियों के लिए मुफीद है। कार्यस्थलों पर कामगारों की अनवरत उपस्थिति से उनकी अर्थव्यवस्था पर अच्छा असर पड़ता है। इसीलिए, अब तरह-तरह के आकर्षक ऑफर देकर कर्मचारियों को लुभाया जाने लगा है, ताकि वे अपना अधिक समय कार्यक्षेत्र में बिताएं। चूंकि नौजवान आबादी पुरानी पीढ़ी की तुलना में कहीं अधिक उत्साहित और भौतिक सुख-सुविधाओं को जल्द से जल्द जुटा लेने की आकांक्षी है, इसलिए उसकी इस मानसिकता का लाभ उठाने की मंशा के तहत सप्ताह में 70, 90 या 120 घंटे काम करने का शिगूफा छोड़ा जा रहा है। जल्द से जल्द अच्छी नौकरी पाने, घर या गाड़ी खरीदने की महत्वाकांक्षा गलत नहीं, लेकिन इसके लिए सेहत के साथ समझौता करना भी उचित नहीं।

यह सही है कि आज भी अपने यहां ऐसे कई कर्मचारी होंगे, जो आठ घंटे रोजाना से अधिक काम कर रहे हैं। इसमें हम उन महिलाओं के बारे में भी नहीं सोच रहे, जो पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वाह में अपना पूरा दिन लगा रही हैं। वे तो रोजाना 20 घंटे तक काम कर ही रही हैं। मगर जब मानक गढ़ने की बात हो, तब हमें सेहत का ख्याल जरूर रखना

चाहिए। वैसे भी, फैक्टरी ऐक्ट, 1948 में अधिक से अधिक नौ घंटे काम लेने का प्रावधान है। इसके ऊपर काम करने पर ओवरटाइम और कर्मचारियों के विश्राम का भी प्रावधान है।